International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-5, Issue-3 May- June-2018
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

डॉ. रामविलास शर्मा और राष्ट्रीयता

डॉ. देवेन्द्र सिंह
व्याख्याता–हिन्दी
महारानी श्रीजया राजकीय महाविद्यालय
भरतपुर (राजस्थान)

डॉ॰ रामविलास शर्मा राष्ट्रीयता के पष्चिमी मानदंडो को भारतीय संदर्भ में न केवल खारिज करते हैं बल्कि यूरोपीय संदर्भों में भी उनके खोखलेपन को उजागर करते हैं। भारत की जातीय एकता और विषिष्ट स्वरूप की पहचान, आखिल भारतीय संदर्भों का उदघाटन, प्राचीन गौरव की प्रतिष्ठा, राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा, पष्चिमी श्रेष्ठता के मिथक का खंडन, विघटनकारी तत्व, परिस्थितियाँ और कारणों की खोज, राष्ट्रीय विकास के प्रति प्रतिबद्धता आदि उनकी राष्ट्रीयता के महत्वपूर्ण घटक हैं। एक्यबोध, स्वत्वबोध और स्वातंत्र्य बोध नामक बिन्दुओं में इन सभी का अध्ययन किया जा सकता है।

□□एक्यबोध अर्थात बहुजातीय राष्ट्रीयता या साहित्य का अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य – डॉ॰ रामविलास शर्मा "भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ नामक अपनी पुस्तक में एकजातीय, द्विजातीय और बहुजातीय राष्ट्रीय पर विवेचनोपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संसार में 'एक जातीय राष्ट्र' की अवधारण, अपवाद है और नियम है 'बहुजातीय राष्ट्रीयता'।"[1] यह सत्य है कि भारत एक बहुजातीय राष्ट्र है। यहाँ निवास करने वाली जातियाँ सदियों से न केवल सहअस्तित्व पूर्वक रहती आई है बल्कि भारतीय राष्ट्रीयता के मजबूत क्षेत्रीय आधार हैं। क्योकि "जातीयता और राष्ट्रीयता में अन्तर्विरोध नहीं है। जैसे राष्ट्रीयता के बिना अन्तरराष्ट्रीयता का अस्तित्व सम्भव नहीं है, वैसे ही जातीयता के बिना राष्ट्रीयता का अस्तित्व सम्भव नहीं है फिर राष्ट्र चाहे एकजातीय हो, चाहे बहुजातीय हो।"[2] यहाँ की समस्त जातियाँ अपनी निजी पहचान कायम रखते हुए अपने राष्ट्रीय स्वरूप को कभी धूमिल नहीं होने देती। इसलिए डॉ॰ शर्मा को लिखना पड़ा कि "जर्मन या लैटिन समुदायों के भाषा क्षेत्रें में बहुजातीयता का विकास न तो यूरोप में हुआ, न अमरीका में।. . . भारत में बहुजातीय राष्ट्रीयता का विकास मानव समाज की विषिष्ट उपलब्धि है।"[3] कहना न होगा कि इस विषिष्ट उपलब्धि का आधार भारतीय जातियों का एक्यबोध है। हम सब एक हैं की भावना ही उन्हें एक राष्ट्र के रूप में स्थापित करती है। भारतीय साहित्येतिहास के अध्ययन व लेखन में इस बहुजातीय एक्यबोध की पहचान होनी चाहिए। भारत में अनेक जातियाँ हैं, उनकी अपनी–अपनी भाषाएँ हैं, उन भाषाओं का अपना–अपना साहित्य है। इस साहित्य पर भारत के बहुजातीय एक्यबोध का

अमिट प्रभाव प्राचीन काल से आज तक आसानी पहचाना जा सकता है जो उसे 'भारतीय साहित्य' कहलाने का हकदार बनाता है।

भारतीय साहित्य की पहचान और उसका इतिहास लेखन डॉ॰ रामविलास शर्मा की महत्वपूर्ण और अधूरी रह गयी आकांक्षा थी। लेकिन, ध्यान रहे कि डॉ॰ शर्मा के लिए 'भारतीय साहित्य', 'यूरोपियन साहित्य' के समकक्ष नहीं था। क्योंकि "यूरोप राष्ट्र नहीं है, भारत राष्ट्र है। यूरोपियन साहित्य यूरूप का राष्ट्रीय साहित्य नहीं है। भारतीय साहित्य भारत का राष्ट्रीय साहित्य है।"[4] भारतीय साहित्य के स्वरूप के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि "जैसे भारत की विभिन्न जातियों की एकता से भारत का राष्ट्रीय स्वरूप बना है, वैसे ही विभिन्न जातियों के जातीय साहित्य की सामान्य विषेषताओं के मेल से भारतीय साहित्य का स्वरूप निर्मित हुआ है। सभी जातियों के जातीय साहित्य की निजी विषेषताओं हैं तो सभी जातियों के साहित्य में व्याप्त कुछ सामान्य राष्ट्रीय विषेषताएँ भी हैं।"[5] वे साहित्येतिहास लेखन में साहित्य के आखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य को उजागर करने के पक्षधर हैं। हालांकि वे इस कार्य की कठिनाई से भी भली–भाँति परिचित थे। वे यह जानते थे कि "भारतीय साहित्य के इतिहास का विवेचन वैसे तो किसी भी विचारधारा के इतिहासकारों के लिए चुनौती है क्योंकि जातियों की निर्माण प्रक्रिया का विवेचन उसमें नहीं के बराबर है।. . .इतिहासकार चाहे मार्क्सवादी हो, चाहे गैर मार्क्सवादी हो, भारतीय साहित्य का इतिहास लिखेगा हो उसे विभिन्न भाषाओं के साहित्य के आपसी सम्बन्धों पर ध्यान देना होगा।. . .वास्तविकता यह है कि भारत की किसी भी भाषा के साहित्य का इतिहास सही ढंग से अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही लिखा जा सकता है।"[6] अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य का अर्थ जातीयता की उपेक्षा नहीं करनी है "साहित्य के जातीय स्वरूप के आधार पर भारतीय साहित्य का इतिहास लेखन अनेक गलत धारणाओं को दूर करके हमारे जातीय और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के विकास में सहायक हो सकता है।"[7] उन्हें इस बात का बेहद दुःख है कि "वर्तमान युग भारत में जातीय प्रतिद्वन्द्विता का युग है। जातीय सहयोग की आकांक्षा निर्बल है। इस कारण पुराने जमाने में जहाँ ऐसा जातीय सहयोग भाषा और साहित्य में हुआ है, उसे हम देखना नहीं चाहते या देखकर उचित निष्कर्ष निकालना नहीं चाहते।"[8] कहने की आवष्यकता नहीं कि **डॉ॰ शर्मा** अपने लेखन में इसी प्रेरणा के आधार पर न केवल जातीय सहयोग को पहचानते हैं बल्कि उनसे उचित निष्कर्ष प्राप्त कर भारतीय राष्ट्रीयता की ऐसी चुनौतीपूर्ण दीवार खड़ी करते हैं कि राष्ट्रीय विघटनकारी तत्त्व उधर आँख उठाकर देखने की हिम्मत तक नहीं जुटा पाते।

डॉ॰ रामविलास शर्मा "संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंष को प्राचीन भारतीय साहित्य एवं भारत की जातीय भाषाओं के साहित्य से आधुनिक भारतीय साहित्य की शुरुआत मानते हैं।"[9] वे भारतीय साहित्य के वृहद स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "यूरोप के विपरीत भारत का विकास एक राष्ट्र के रूप में हुआ।" संस्कृत का एक केन्द्र सुदूर उत्तर में गांधार में था जहाँ पाणिनि ने अपना महान व्याकरण रचा। दूसरा केन्द्र सुदूर दक्षिण केरल में था जहाँ के शंकराचार्य ने आखिल भारतीय स्तर पर वेदांत दर्शन का प्रचार किया। केवल इन दो नामों से संस्कृत भाषा में उपलब्ध संस्कृत का आखिल भारतीय स्वरूप प्रकट हो जाता है। . . .वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, षड़दर्शन, कालिदास और भवभूति के नाटक और काव्य हिन्दी जाति के सांस्कृतिक इतिहास का अभिन्न अंग है। इसी प्रकार पालि और प्राकृत में रचा हुआ अधिकांश साहित्य इसी प्रदेश के विद्वानों का कृतित्व हैं अपभ्रंश साहित्य पूर्णतः नहीं, हिन्दी प्रदेश के कवियों की देन है। इन सबको भारतीय साहित्य के अन्तर्गत माना जाता है और यह उचित है।"[10] उनके अनुसार "वैदिक पौराणिक धर्म, बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म तीनों के केन्द्र उत्तर भारत में थे। सामन्ती व्यवस्था के तहत इनका प्रचार–प्रसार एक आखिल भारतीय प्रक्रिया थी।"[11]

प्राचीन साहित्य के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में अनेक आखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य विद्यमान हैं। "तमिल भाषा संस्कृत–प्राकृत के आखिल भारतीय भाषा तंत्र से बाहर नहीं थी। कन्नड़, तेलगू और मलयालम जैसी द्रविड़ भाषाएँ इस तंत्र के भीतर थीं यह तो बहुत स्पष्ट है।"[12] "देशी भाषाएँ एक–दूसरे के विकास में सहायक हुई हैं। अवधी खडी बोली हिन्दी के अनेक तत्त्व एक ओर बंग्ला में दिखाई देते हैं, दूसरी ओर मराठी में। इसके साथ देशी भाषाओं के अन्तर्विरोधे भी विद्यमान रहते हैं।"[13] "कबीर की तरह नामदेव का ब्रज और खडी बोली के क्रिया रूपों का व्यवहार करना यह सिद्ध करता है कि ब्रज और खडी बोली का जातीयता की तरह राष्ट्रीयता के स्तर पर भी प्रचार–प्रसार हो रहा था और प्रचार के वाहक थे व्यापारी और कारीगर।"[14] भक्ति साहित्य के आखिल भारतीय स्वरूप से हम भली–भाँति परिचित हैं। "भक्ति साहित्य अनेक क्षेत्रों, अनेक कलाओं, अनेक जातियों, अनेक धर्मों, अनेक भाषाओं के संगम से जातीय साहित्य होने के साथ–साथ हमारा राष्ट्रीय साहित्य भी था।"[15]

डॉ॰ रामविलास शर्मा बहुजातीय राष्ट्रीयता या भारतीय एक्यबोध को स्पष्ट करने के लिए भारत के **प्रसिद्ध जातीय कवियों की राष्ट्रीयता** को पूरी शिद्दत के साथ अपने लेखन में स्थान दिया है। जो उनकी आखिल भारतीय साहित्येतिहास दृष्टि का ही प्रमाण है। वे विश्व कवि **रवीन्द्रनाथ टैगोर** के सम्बन्ध में लिखते हैं कि "बंगाल के वैष्णव कवि, हिन्दी के सगुण–निर्गुण कवि, संस्कृत के कालिदास तथा अनेक

धाराएँ रवीन्द्र नाथ काव्य में नया जीवन पाती हैं। इस प्रकार बंगाल की जातीय चेतना के साथ वे आखिल भारतीय काव्य चेतना को भी नया रूप देते हैं।"[16] तमिल कवि **सुब्रह्मण्य भारती** के राष्ट्रीय महत्व की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि "भारती का दृष्टिकोण केवल तामिलनाडु के लिए नहीं, वरन् इस युग के लिए, पूरे भारत के लिए प्रासंगिक है।. . . उन्होंने अपने कवि कर्म से सिद्ध किया कि भारतीय संस्कृति में इतनी ऊर्जा है कि वह देष को आधुनिक शक्तिषाली राष्ट्र के रूप में विकसित कर सके।. . . उनकी तमिल जातीयता, आखिल भारतीय राष्ट्रीयता और विष्व मानवता में आन्तरिक तर्क संगत सम्बन्ध है।"[17] **महाप्राण निराला** की भारत भक्ति उन्हें हर जगह प्रभावित करती है। वे लिखते हैं कि "देवी रूप में भारत को देखना निराला का काम है।. . . निराला में हिन्दी जातीयता की प्रेरणा राष्ट्रीय स्वाधीनता के प्रेम से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है।. . . निराला में भारतीय दर्षन की अनेक धाराएँ सिमट आई हैं। योग सांख्य शंकर वेदान्त के अलावा उनमें शैव और शाक्त धारणाएँ भी आ मिली हैं। वह भारतीय काव्य की पुरानी प्रगतिषील परम्परा से सम्बन्ध हैं, वह समकालीन बंगला साहित्य की धारा से सम्बन्ध जोड़ते हैं, वह अंग्रेजी के काव्य साहित्य से भी प्रेरणा ग्रहण करते हैं। उन्होंने उर्दू काव्य भी पढ़ा था, विषेष रूप के गालिब का अध्ययन किया था। इस व्यापक अध्ययन के चिह्न उनके साहित्य में कहीं प्रत्यक्ष, कहीं अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान हैं।"[18]

डॉ॰ रामविलास शर्मा 'जातीय कवि, राष्ट्रीय कवि और विष्व कवि इन तीनों उपाधियों में कोई अन्तर्विरोध नहीं मानते क्योंकि महान साहित्यकार अपनी जातीय भाषा में रचना करते हैं तथा प्रदेष, देष और विष्व की जनता उनकी दृष्टि से कभी ओझल नहीं होती। उनके अनुसार "जातीयता का समर्थन और जातीय संकीर्णता का विरोध, राष्ट्रीयता का समर्थन और उससे ऊपर उठकर विष्व मानवता का समर्थन, ये दोनों बातें स्वीन्द्रनाथ ठाकुर में हैं और निराला में भीं।"[19] डॉ॰ शर्मा के अनुसार, "जनपदीय संस्कृति का चितेरा कवि भी जातीय कवि, राष्ट्रीय कवि और विष्व कवि हो सकता है। वास्तव में साहित्यकार के लिए इनमें कोई अन्तर्विरोध नहीं है।" तुलसीदास और निराला अपनी जनपदीय संस्कृति से जुड़े हुए थे। यह सत्य है कि कोई भी बड़ा साहित्यकार जब साधारणजनों की ओर ध्यान देगा तब वह किसी जनपद से ही जुड़ेगा।[20]

डॉ॰ रामविलास शर्मा धार्मिक आधार पर समाज और साहित्य की व्याख्या करने की बजाय जातीय संस्कृतियों के आधार पर करने के पक्षपाती हैं। उनके मतानुसारा 'जैसे प्रादेषिक संस्कृतियों से अलग कोई भारतीय संस्कृति नाम की वस्तु नहीं है।. . .भारत की प्रादेषिक संस्कृतियों में जो सामान्य तत्त्व हैं, उन्हें

हम भारतीय संस्कृति कहते हैं।' वे "न तो हिन्दू संस्कृति को मानते हैं, न मुस्लिम संस्कृति को मानते हैं और न गंगा–जमुनी संस्कृति के पक्षपाती हैं।"[21] वे पूरी दृढ़ता से लिखते हैं कि "भारतीय जनता और उसके साहित्य का इतिहास समूचे राष्ट्र और यहाँ की विभिन्न जातियों, उनकी भाषाओं को ध्यान में रखकर लिखा जायेगा, मुसलमानों के आने से इतिहास के प्रति इस दृष्टिकोण को बदलना जरूरी नहीं है।"[22]

भारतवर्ष में न केवल अनेक भाषाएँ विद्यमान है बल्कि चार भाषा परिवार भी माने जाते हैं। भारतीय राष्ट्रीयता के विरोधी इन भाषा परिवारों को भी राष्ट्रीयता के विरोध में इस्तेमाल करते हैं। साम्राज्यवादी इतिहास दृष्टि से परिचालित विद्वान न केवल इनकी भिन्नताओं को उजागर करते हैं बल्कि इनके मध्य ऐतिहासिक दुष्मनी भी सिद्ध करते आये हैं। **डॉ॰ रामविलास शर्मा** इनकी कूटनीति को समझते हुए न केवल आर्य–द्रविड़ संघर्ष कथा का खंडन करते हैं बल्कि चारों भारतीय भाषा परिवारों के मध्य दीर्घकालीन सह अस्तित्व से उपजी समानताओं को पुष्ट भाषा वैज्ञानिक प्रमाणों से सिद्ध कर उनकी कूटनीतिक चालों को विफल करते हैं। इस सम्बध में उनका पहला तर्क है कि 'राष्ट्र के निर्माण में भाषा परिवार की भिन्नता बाधक नहीं है। वस्तुतः राष्ट्र का निर्माण और विकास इस बात का निर्भरह है कि भिन्न–भिन्न भाषाएँ बोलने वाली जातियों के आपसी सम्बन्ध कैसे हैं? उनकी ऐतिहासिक परम्पराओं में कितनी समानता है? उनके आपसी आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध कैसे हैं? इत्यादि' **दूसरा तर्क है** कि 'भारत एक भाषागत इकाई है और यहाँ मौजूद भाषा परिवारों का सहअस्तित्व अपेक्षाकृत दीर्घकालीन है।' **तीसरा तर्क है** कि 'भारतीय भाषा परिवारों में कुछ सामान्य विषेषताएँ ऐसी हैं जैसी यूरोप के एक ही भाषा परिवार में नहीं है। भाषा परिवार तो बड़ी चीज है, किसी एक परिवार की एक ही शाखा की भाषाओं में भी वैसी समानता नहीं है जैसी यहाँ भिन्न भाषा परिवारों में है।' उनका निष्कर्ष है कि 'आर्यों द्वारा भारत विजय की कहानी विषुद्ध मनगंढ़त है। अतः जिस आर्य–द्रविड़ संघर्ष की कल्पना के आधार पर भारतीय राष्ट्रीयता का खण्डन किया जाता है, वह स्वयं निराधार है।[23]' इस बात की पुष्टि **भगवान सिंह** भी करते हैं। वे लिखते हैं कि "प्राचीन काल में ही यहाँ के भाषा परिवार कुछ सामान्य विषेषताओं का विकास कर चुके थे। ये विषेषताएँ आर्य नहीं अखिल भारतीय हैं।"[24]

डॉ॰ रामविलास शर्मा के साहित्य के प्रति इस अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य को अनेक विद्वानों ने स्वीकार कर उसके महत्व को रेखांकित किया है। **डॉ॰ कुँवरपाल सिंह** मानते हैं कि "हिन्दी में रामविलास शर्मा के अतिरिक्त कोई दूसरा लेखक नहीं है जिसने हिन्दी साहित्य और भाषा को वृहत् भारतीय परिवेष से जोड़ा हो।"[25] डॉ॰ **जगदीष्वर चतुर्वेदी** की दृष्टि में "वे हिन्दी के प्रथम आलोचक हैं जिन्होंने हिन्दी

साहित्य को भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में देखने की बात की।"[26] **डॉ॰ सुधा सिंह** भी यही मानती हैं कि "वे ऐसे पहले विचारक हैं जिसने हिन्दी जाति के साहित्य और भारतीय साहित्य को राष्ट्रीयता के संदर्भ में देखा है।"[27] **डॉ॰ कृष्ण चन्द गोस्वामी** उनकी भारतीयता की मूल प्रेरणा की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं कि "अनेक धर्मों, अनेक भाषाओं और अनेक जातियों का सह अस्तित्व स्वीकार करके ही भारत वह काम कर सका जो योरोप नहीं कर सका, वह एक राष्ट्र बना। उनकी यह धारणा मार्क्स, एंगेल्स या लेनिन को आप्त मानकर स्थिर नहीं हुई है। उल्लेखनीय है कि 'बहुधाविवाचसं नाना धर्माणाम' (अथर्ववेद) को भारत की बहुजातीय राष्ट्रीयता का आधार मानते हैं।"[28]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि डॉ॰ रामविलास शर्मा भारतीय साहित्य में उपस्थित एक्यबोध अर्थात अखिल भारतीय संदर्भों को उजागर कर साहित्येतिहास लेखन का प्रस्ताव किया है। उनकी यह बहुजातीय राष्ट्रीयाता की अवधारणा सर्वदा मौलिक और साहित्येतिहास लेखन की दृष्टि महत्वपूर्ण है। इसके वर्तमान महत्त्व को स्पष्ट करते हुए वे स्वयं लिखते हैं कि "आज की परिस्थितियों में विभिन्न भाषाओं के बोलने वालों का एक–दूसरे की साहित्यिक गतिविधि से परिचित होना एक राष्ट्रीय महत्व का कार्य हो गया है।. . .भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में बहुत अधिक समानता है, इसलिए हमारी विभिन्न भाषाओं के साहित्य में विविधता के अलावा बहुत–से मूलभूत तत्त्व समान हैं। इसलिएह परस्पर स्पर्धा और अहंकार की भावनाएँ त्यागकर एक–दूसरे से स्वीकार अपने साहित्य द्वारा समग्र भारतीय वाङग्मय को समृद्ध करने का प्रयास श्रेयस्कर होगा।"[29]

□□स्वत्वबोध अर्थात भारतीय गौरव की प्रतिष्ठा – "दीर्घकालीन गुलामी, साम्राज्यवादी इतिहास दृष्टि और आर्थिक बदहाली के चलते विष्व गुरु माने जाने वाला भारत अपनी अस्मिता से भी अनजान हो गया था। पष्चिमी और अनेक भारतीय विद्वानों को पहले और अब भी भारतीय समाज, भारतीय इतिहास, भारतीय धर्म–दर्षन, भारतीय संस्कृति और भारतीय साहित्य में ऐसा कुछ भी नजर नहीं आता था जिसे पष्चिम के समकक्ष माना जा सके।"[30] पष्चिमी विद्वान भारतीय इतिहास, संस्कृति और साहित्य की मनमानी व्याख्या कर हमें हीन से हीनतर सिद्ध करते रहे। **डॉ॰ रामविलास षर्मा** ऐसे पहले समर्थ विचारक हैं जिन्होंने भारत के सम्बन्ध में प्रचलित अपमानजनक और अप्रामाणिक धारणाओं का खंडन कर स्वत्व भाव से भारतीय इतिहास, संस्कृति और साहित्य की व्याख्या कर भारतीय गौरव की प्रतिष्ठा की। वे पष्चिमी और भारतीय विचारकों पर एक साथ निषाना साधते हुए लिखते हैं कि "भारत का रूढ़िवादी पुरोहित वर्ग

और पष्चिमी संसार का वैज्ञानिक विचारक समुदाय भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित अनेक मुद्दों पर एकमत है। दोनों के लिए ऋग्वेद ब्राह्मणों का रचा हुआ धर्मग्रंथ है और भारतीय समाज की मुख्य विषेषता है उसकी अपरिवर्तनीय वर्ण व्यवस्था। भारत के रूढ़िवादी नहीं जानते कि वे कितना 'वैज्ञानिक' हैं, पष्चिमी संसार के वैज्ञानिक विचारक नहीं जानते, वे कितना रूढ़िवादी हैं।"[31] अपने लेखन के माध्यम से उन्होंने प्रयास किया है कि "देषी रूढ़िवादियों और पष्चिमी संसार के 'वैज्ञानिक' विचारकों से अलग हटकर ऐसा रास्ता बनाया जाये जिस पर चलते हुए भारतीय साहित्य के और बहुत से पक्षों का वस्तुगत विवेचन किया जा सके।"[32] उनकी दृष्टि में प्राचीन संस्कृति का अध्ययन अत्यन्त प्रासंगिक है क्योंकि "इस सम्बन्ध में हमारी भ्रांतियाँ और उसकी उपेक्षा वर्तमान विकास को अवरुद्ध करने वाली है।"[33]

डॉ॰ रामविलास शर्मा इस बात पर विषेष बल देते हैं कि हमारे यहाँ काव्य और दर्षन की एक सुदीर्घ सतत और समर्थ परम्परा मौजूद है जिसकी या तो हमने उपेक्षा की है अथवा उसे पष्चिमी दृष्टि से ही समझा है। वे इस परम्परा को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि "संसार का प्राचीनतम ग्रंथ हमारे देष का ऋग्वेद है। ऋग्वेद से पहले काव्य, दर्षन और इतिहास की सुदीर्घ परम्परा थी।. . .रामायण और महाभारत इन प्रसिद्ध महाकाव्यों का गहरा सम्बन्ध ऋग्वेद से है। उपनिषदों की विचारधारा आगे बढ़ती है। कालिदास और भवभूति जैसे महाकवि रामायण और महाभारत से सामग्री लेकर उसे नया रूप देते है। काव्य और दर्षन की इस सुदीर्घ परम्परा से रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सुब्रह्मण्य भारती, निराला जैसे समर्थ कवि जुड़े हुए हैं। कोई विद्वान इस प्राचीन संस्कृति की उपेक्षा करके इन महाकवियों का अध्ययन पूरा नहीं कर सकता।"[34] अतः इस साहित्य परम्परा का महत्व स्वयंसिद्ध है।

डॉ॰ रामविलास शर्मा पष्चिमी विचारकों के इस आरोप का सतर्क खंडन करते हैं कि भारतवासी **'आत्मा और परलोक'** की चिंता में **'षरीर और भौतिक जगत'** की उपेक्षा करते हैं। उनका मानना है कि भारत में जो भी ज्ञान विज्ञान की उन्नति हुई है, वह सापेक्ष रूप में संसार और मानव शरीर को सत्य मानकर ही हुई है। पाणिनि, चरक, अग्निवेष, पुनर्वस्सु, कौटिल्य, वृहस्पति, उराना आदि आर्चाय इसके प्रमाण हैं। भारतीय दर्षन के मूल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण निहित है। लोकायत, सांख्य, योग और वैषेषिक दर्षन यथार्थवादी दर्षन हैं तथा जिनके मूल में लोक कल्याण की भावना निहित है। **उनका निष्कर्ष** है कि "संन्यास भारतीय संस्कृति की मूल धारा नहीं है। भारतीय जनता के चरित्र निर्माण में रामायण और महाभारत की अद्वितीय भूमिका है। इन महाकाव्यों मे कोई भी पात्र सन्यासी नहीं है।"[35] भौतिकवाद भारतीय

दर्षनों में सबसे पुराना दर्षन है क्योंकि "षेष सभी दर्षनों की शुरुआत भौतिकवाद के विरोध से हुई है।"[36] ऋग्वेद की 'वैचारिक विविधता और अद्वैतवाद' उसकी विषिष्ट उपलब्धि है।"[37]

प्राचीन भारतीय साहित्य कोरा अध्यात्मवादी, कर्मकांडी और काल्पनिक कथाओं का संग्रह न होकर यथार्थवादी वैज्ञानिक दर्षन पर आधारित है। "ऋग्वेद के ऋषि घर बनाते है, पुर बसाते हैं, धरती और आकाष को नापते हैं। पाटिल पुत्र, काषी, मथुरा और उज्जायिनी जैसे प्राचीन नगरों से यह धारणा खंडित हो जाती है कि भारत पिछड़ा हुआ और ग्राम समाजों का देष था।"[38] प्राचीन काल में भारतीय अर्थतंत्र यूरोप के मुकाबले विकसित अवस्था में था। क्योंकि "भारतीय सामंतवाद अभ्युदय काल से ही कृषि और उद्योग धंधों को अलग करके विकसित हुआ था। उधर यूरूप का सामंतवाद कृषि और उद्योग धंधों को संयुक्त रखते हुए विकसित हुआ था। यही कारण है कि अषोक के समय से लेकर अकबर समय तक भारत संसार में व्यापार का प्रमुख केन्द्र रहा।"[39] भारत की समृद्धि संसार की समृद्धि का आधार बनी है। "अपने प्राचीन काल में भारत के लोग व्यापार करते थे, वे कमर्षिलय पीपुल थे, ऐसा विष्वास करने के कारण हैं।"[40] उनका यह भी निष्कर्ष है कि "भारत को लोग जितना पिछड़ा हुआ समझते है उतना था नहीं और इग्लैंड को वे जितना बढ़ा हुआ समझते हैं उतना वह बढ़ा हुआ भी नहीं था। इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति भारत की लूट के बल पर ही संभव हुई थी।"[41] **डॉ॰ रामविलास शर्मा** के अनुसार 'जल प्रलय' तथा "सस्वती के मार्ग परिवर्तन के कारण भारत के विस्थापित लोगों ने पष्चिमी एषिया और यूरूप की नगर सभ्यता के विकास में योगदान किया।"[42] "यूनान की प्राचीन संस्कृति आधुनिक युरूप के ज्ञान विज्ञान की आधारषिला है।"[43] "चौदहवीं सदी तक यूरोपवासियों को यूनान की महान सभ्यता का पता न था। उनसे पहले अरब इस सभ्यता से परिचित हुए। . . .इस तरह भारतीय और यूनानी संस्कृति के अनेक तत्त्व अरबों के माध्यम से यूरोप पहुँचे। यूनानी संस्कृति का प्रभाव यूरोप के नवजागरण का महत्त्वपूर्ण कारण बना।"[44] यूरोपीय दर्षन के विकास में भारतीय योगदान और उसकी प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन डॉ॰ रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक **'भारतीय नवजागरण और यूरोप'** में किया है।[45] "विलियम जोन्स के लेखन में यूनान की नहीं भारत की श्रेष्ठता स्पष्ट दिखाई देती है। यह श्रेष्ठता दर्षन, नीतिषास्त्र, भूगोल, विज्ञान, संगीत, साहित्य, भाषा और लिपि आदि सभी क्षेत्रों में देखी जा सकती है।"[46] लेकिन डॉ॰ शर्मा को इस बात का बेहद अफसोस है कि "मार्क्स जैसा क्रांतिकारी कैसे इस नतीजे पर पहुँचा कि अगर अंग्रेज न आते तो भारत में क्रांति ही नहीं होती।"[47] इस तरह डॉ॰ शर्मा उन लोगों को करारा जबाव देते हैं जो अब तक यह मानते आ रहे थे कि अंग्रेज न आये होते तो भारत का विकास नहीं होता। उनकी दृष्टि में उल्टा यूरोप के विकास में भारत के योगदान को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता।

डॉ॰ रामविलास शर्मा साहित्य के क्षेत्र में भी यूरोपीय श्रेष्ठता का खण्डन करते हैं। वे यूरोप के पुनर्जागरण काल को भारत में मध्यकाल कहने को तर्क संगत नहीं मानते। क्योंकि सन् 1550 से 1650 तक का समय भारत और यूरोप के लिए साहित्य कला और व्यापार की दृष्टि से लगभग समान उपलब्धियों का समय है।[48] ऐसी स्थिति में शेक्सपीयर और मिल्टन के युग को आधुनिक तथा सूरदास और तुलसीदास के युग को प्राचीन कहना साम्राजयवादी दृष्टि का परिचायक है। साहित्य का इतिहास लिखते समय शासक जाति और शासित जाति के लिए अलग–अलग कसौटियाँ नहीं हो सकतीं।"[49] वे "यूरोपीय पुनर्जागरण के समकक्ष भारत में ऋग्वेद से आधुनिक काल तक अनेक जागरण मानते हैं क्योंकि यहाँ यूनान और इटली की तरह नगरों का पूर्ण विनाष कभी नहीं हुआ होता तथा अंग्रेजी राज से पूर्व लगातार यूरोप का सोना भारत में आता रहा है। अतः यहाँ यूरोप की तरह लम्बा अंधकार युग कभी रहा ही नहीं।"[50] इसके अलावा "यूरोपीय साहित्यकारों का सम्बन्ध अधिकांषतः अभिजात वर्ग से था जबकि अधिकांष श्रेष्ठ भारतीय साहित्यकारों का सम्बन्ध निम्न वर्ग से रहा है। साहित्य का यह लोकवादी स्वर संसार में अद्वितीय और प्रगतिषील है जिससे यूरोपीय धर्म सुधारक बहुत कुछ सीख सकते थे।"[51] भारतीय साहित्य के महत्त्व को पहचानते हुए वे लिखते हैं कि "जोन्स की कविताओं के अध्ययन से पता चलता है कि इग्लैण्ड के विद्वान यूनानी साहित्य से परिचित नह होते; तो भी भारतीय साहित्य से प्रेरित होकर वे रोमांटिक आन्दोलन को जन्म दे सकते थे। निःसंदेह भारत में अंग्रेज न आये होते तो भी, सांस्कृतिक नवजागरण सम्भव था।"[52]

इस तरह हम कह सकते हैं कि डॉ॰ रामविलास शर्मा ने आर्थिक विकास, दार्षनिक श्रेष्ठता और साहित्यिक अद्वितीय की पहचान कर भारत के प्राचीन गौरव की प्रतिष्ठा और यूरोपीय श्रेष्ठता का खण्डन कर हमें औपनिवेषिक मानसिकता से मुक्त करने का प्रयास किया है। जो वैयक्तिक स्तर पर उनके स्वत्व बोध का ही परिणाम है। **गाँधी जी** अपने इतिहास अध्ययन के अनुभव के बारे में लिखते हैं कि "मुझे इतिहास सिखाने की अपने स्कूल की पद्धति में इस देष के बारे में गर्व अनुभव करने का कोई कारण नहीं मिला।"[53] इस प्रवृत्ति का कारण बताते हुए **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** लिखते हैं कि "प्रधान प्रेरणा स्रोत विदेषी विचारक बने रहे और इस देष के षिक्षिकों ने अपने पुराने साहित्य के प्रति एक ऐसा मनोभाव पैदा कर लिया जिसे अंग्रेजी में 'म्यूजियम इंटरेस्ट' कहते हैं।. . . इनको यदि सम्पूर्ण समाज की बृहत्तर पटभूमि का में रखकर और प्रधान निर्धारित स्रोत मानकर अपना आलोचना मान निर्धारित किया गया होता तो कुछ और ही फल होता।"[54] कहने की आवष्यकता नहीं हैं कि डॉ॰ शर्मा अपने लेखन में देष के

इतिहास पर गर्व करने और अपने प्राचीन साहित्य के आधार पर आलोचना मान विकसित करते देखे जा सकते हैं।

डॉ॰ रामविलास शर्मा द्वारा प्राचीन भारत की गौरव प्रतिष्ठा परियोजना की अनेक विद्वानों ने मुक्त कंठ से प्रषंसा की है। मार्क्सवादी विचारक **पूरनचन्द जोषी** मानते हैं कि 'उन्होंने ऋग्वेद की तस्वीर ही बदल दी हैं।' लेकिन उन्हें दुःख है कि "लोग इसे प्रतिक्रियावादी काम मान रहे हैं।"[55] **डॉ॰ रणजीत साह** इसे "भारतीय इतिहास दृष्टि विकसित करने वाला काम मान रहे हैं।"[56] **डॉ॰ श्याम कष्यप** के अनुसार "उन्होंने इतिहास विज्ञान की यूरोप केन्द्रित अवधारणा की चौहदी विस्तृत करके उसे भारत और एषिया के बृहत्तर संदर्भो से जोड़ा है।"[57] **डॉ॰ प्रकाष** के अनुसार "उन्होंने भारतीय संस्कृति के यथार्थवादी आधार की खोज की है।"[58] **डॉ॰ शम्भूनाथ** इसे उनके जीवन भर की साधना मानते हुए स्पष्ट करते हैं कि "यूरोपीय बुद्धि जीवियों ने भारत की खोज के बहाने भारत को गायब किया है। बौद्धिक उपनिवेषन की मारी इस विडम्बना से निपटने के लिए रामविलास शर्मा ने अपना पूरा जीवन भारत को फिर से खोजने में लगा दिया।"[59] **डॉ॰ खगेन्द्र ठाकुर** के अनुसार "जनता में राष्ट्रीय गर्व की भावना जगाना उनके लेखन का सूत्र वाक्य है।"[60]

कुछ लोग डॉ॰ शर्मा पर हिन्दुत्ववादी एजेंडे तथा अंध राष्ट्रवादियों के समर्थन में काम करने का आरोप लगाते है लेकिन **नित्यानंद तिवारी** के अनुसार ऐसे लोगों की "नीयत साफ नहीं है।"[61] डॉ॰ षिवकुमार शर्मा का निर्णय है कि "राम विलास शार्म के तर्क और सोच हिन्दुत्ववादियों से भिन्न है। वे उन्हें चालाकी से इस्तेमाल कर सकते हैं, समग्र रूप से पचा नहीं सकते।"[62]

□□**स्वतंत्र्य बोध अर्थात औपनिवेषिक मानसिकता से मुक्ति –** स्वतंत्र्य, समता और न्याय के त्रिकोण से निर्मित लोकतांत्रिक जीवन पद्धति मानव जाति की विषिष्ट उपलब्धि है। स्वतंत्रता मनुष्य ही नहीं मानवेतर प्राणियों को भी प्राणो से प्यारी है। स्वातंत्र्य बोध की स्वीकृति सभ्य समाज की पहचान है लेकिन मानव सभ्यता शायद अभी उस मुकाम से बहुत दूर है। यही कारण है कि राजनैतिक स्वतंत्रता आज किसी राष्ट्र की पहली आवष्यकता है। जो राष्ट्र आज राजनैतिक रूप से स्वतंत्र हैं, आवष्यक नहीं कि वे मानसिक रूप से भी स्वतंत्र हों। स्वतंत्रता प्राप्त करने से बढ़कर है उसे बनाये रखना। किसी देष की स्वतंत्रता स्थायी रहे इसके लिए आवष्यक है कि उस देष का निरंतर राष्ट्रीय विकास हो और राष्ट्रीय विकास के लिए आवष्यक है कि हम अपनी राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति कितने संवेदनषील हैं। इस तरह

राजनैतिक स्वतंत्रता, राष्ट्रीय विकास और **राष्ट्रीय समस्याओं** के प्रति जाकरुक रहना बृहद अर्थ में स्वातंत्र्य बोध के ही फलक हैं। **डॉ॰ रामविलास शर्मा** की राष्ट्रीयता को समझने के लिए उनके स्वतंत्र्य बोध की समझ आवष्यक है तथा स्वातंत्र्य बोध को समझने के लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता, एकता और विकास की समझ जरूरी है।

डॉ॰ रामविलास शर्मा का लेखन भारत की पराधीनता के समय ही प्रारम्भ होता है। सब जानते हैं कि **'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।'** फिर एक साहित्यकार अपने देष की गुलामी कैसे स्वीकार कर सकता था? वे यह बात भली–भाँति जानते थे कि "एक पराधीन देष की जनता अपने जीवन की हर घड़ी और हर क्षण में अपनी राजनीतिक स्वाधीनता के अभाव को महसूस करती है।"[63] रामविलास शर्मा के अनुसार "लगभग दो सौ वर्षो से भारत के सामने मुख्य समस्या राष्ट्रीय स्वाधीनता और राष्ट्रीय एकता की रही है।"[64] राजनैतिक पराधीनता की स्थिति में स्वतंत्रता से भिन्न कोई और मूल्य हो ही नहीं सकता, साहित्यकार के लिए तो सम्पूर्ण मानव मुक्ति ही काम्य होनी चाहिए। वे लिखते हैं कि "अभी भी मानव सम्बन्धों के पिजड़े में मानव विहग बंदी है। मुक्त गगन में उड़ान भरने के लिए व्याकुल है।. . . धिक्कार है उन्हें जो तीलियाँ तोड़ने के बदले उन्हें मजबूत कर रहे हैं, जो भारत भूमि में जन्म लेकर और साहित्यकार होने का दंभ करके मानव मुक्ति के गीत न गाकर भारतीय जनता को पराधीनता और पराभव का पाठ पढ़ाते हैं।"[65] वे अपनी पक्षधरता को स्पष्ट रूप से कहते हैं कि "मैं आग्रहीन इतिहासकार नहीं हूँ। . . .आग्रह तो मेरा है और वह साम्राज्यवाद विरोधी, सामंत विरोधी आग्रह है।. . . जो प्रवृत्तियाँ सामंतवाद और साम्राज्यवाद को खत्म करने वाली हैं, देष को आगे बढ़ाने वाली हैं, उनका मैं समर्थन करता हूँ . . . भारत में ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं, जो विदेषी शासन को, जो विदेषी प्रभुत्व को मजबूत करती हैं, हमारी संस्कृति को दबाकर रखती हैं, सामंती अवषेषों को कामय रखती हैं, उनकी मैं आलोचना करता हूँ।"[66] वे भारतीय साहित्य की इस प्रवृत्ति से प्रसन्न हैं कि "राष्ट्रीय चेतना का प्रसार, उसका विकसित होकर व्यापक जनतांत्रिक रूप लेना, समाजवादी उद्देष्य के प्रति लेखकों का उन्मुख होना–यह रूपरेखा भारत की प्रायः हर भाषा (साहित्य) की है।"[67] **स्पष्ट है कि राजनैतिक स्वतंत्रता, लोकतांत्रिक प्रणाली का विकास, समता मूलक समाज, सामंती उत्पीदन से मुक्ति, विदेषी प्रभुत्व से मुक्ति, राष्ट्रीय विकास उनके स्वातंत्र्य बोध के ही अवयव है।**

डॉ॰ रामविलास शर्मा अंग्रेजी शासन को ही सच्चे अर्थों में भारतीय पराधीनता का युग मानते हैं क्योंकि इससे पूर्व आई आक्रमणकारी जातियाँ या तो तुरन्त चली गई अथवा यहाँ की संस्कृति, जातीयता और भाषा को स्वीकार कर यहीं की हो गई तथा यहाँ के विकास में अपना योगदान दिया जबकि अंग्रेजी

शासन यहाँ की आर्थिक लूट और हर दृष्टि से भारतीय पतन का कारण बना। अंग्रेजों के विरुद्ध हुए 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को डॉ॰ रामविलास षर्मा ने विषेष महत्व दिया है। "उनके लेखन में, उनकी अधिकांष कृतियों में, अठारह सौ सत्तावन का जिक्र किसी न किसी रूप में अवष्य आता है। यह जैसी उनकी चेतना पर छाया हुआ है, उनके समस्त चिंतन की धुरी है।"[68] वे इसके राष्ट्रीय स्वरूप से अत्यधिक प्रभावित और गौरान्वित हैं। उनका मानना है कि "जैसे संस्कृत साहित्य सब नहीं तो अधिकांष हमारा राष्ट्रीय साहित्य और हिन्दी प्रदेष की जातीय विरासत, जैसे हिन्दी राष्ट्रभाषा है और हिन्दी जनता की जातीय भाषा, वैसे ही 1857 का गदर भारत का राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम और हिन्दी प्रदेष की जनता का जातीय संग्राम भी।"[69] राष्ट्रीय स्वतंत्रता के उन पहलुओं को उजागार करते हैं जिन्हें अब तक साम्राज्यवादी इतिहास दृष्टि दबा कर रखना चाहती थी। वे इसकी राष्ट्रीय रूपरेखा, अंग्रेजी राज से मुक्ति की कामना, अंग्रेजी राज की पतनषील भूमिका, जनता, सामंत और किसानों का सामूहिक संघर्ष, हिन्दू–मुस्लिम एकता, स्वदेषी की भावना तथा स्वाभाविक समर्पण की भावना को राष्ट्रीय स्वतंत्रता की दृष्टि अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं।"[70]

"दरअसल डॉ॰ रामविलास शर्मा देष की जनता की देषभक्ति पर पूरा भरोसा करते हैं। युद्धों के अवसर पर जनता की एकता और त्याग की भावना के वे खुद चष्मदीद गवाह हैं।"[71] वे देषभक्ति की दृष्टि से आम जनता को ज्यादा विष्वसनीय मानते है। वे दो टूक शब्दों में कहते हैं कि "यह राष्ट्रीय एकता अब अंग्रेजी जानने वाले डेढ़ फीसदी लोगों के सहारे कायम नहीं रह सकती।"[72] वे राष्ट्रीय एकता के लिए किसान और मजदूरों की एकता को आवष्यक मानते हुए कहते हैं कि "इस आधार को हमने मजबूत नहीं किया 47 से पहले, नही ंतो इनकी हिम्मत थी कि ये देष का विभाजन कर देते? आज हमें यह काम करना चाहिए।"[73] वे राष्ट्रीय एकता को खंडित करने वाले षडयंत्रो को भली–भाँति जानते हैं।

वे साहित्य के साम्राज्यविरोधी स्वर का पूर्ण समर्थन करते हैं। उनके अनुसार "साहित्य में आधुनिकता अंग्रेजी राज की देने नहीं है, उसका विकास इस राज के विरुद्ध संघर्ष के दौरान हुआ।. . . वह पुराने साहित्य की सामंत विरोधी उपलब्धियों की बुनियाद पर विकसित हुई है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन विष्व साम्राज्य विरोधी क्रांति का अंग है, उसी तरह भारतीय साम्राज्य विरोधी विष्व साहित्य का अंग है।"[74] साम्राज्यवादी इतिहासकार और औपनिवेषिक मानसिकता से ग्रस्त भारतीय इतिहासकार एवं साहित्य समीक्षकों ने जानबूझ कर भारतीय जनता की स्वातंत्र्य भावना को उपेक्षित रखा था। डॉ॰ रामविलास शर्मा न केवल 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के राष्ट्रीय महत्व और प्रभाव को उजागर करते हैं बल्कि आधुनिक

हिन्दी साहित्य पर उसके प्रभाव तथा हिन्दी साहित्य की राष्ट्रीय स्वातंत्र्य की भावना को उजागर करते हैं। उनका प्रस्ताव है–जिसका उन्होंने स्वयं पालन किया था कि " देष का इतिहास समझने के लिए अपने प्रदेष का इतिहास समझना भी जरूरी है। जो भी इस इतिहास का विष्लेषण करना चाहते, उसे पहले सन् 57 के स्वाधीनता संग्राम का अध्ययन करना चाहिए। फिर क्रमषः भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और निराला के साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। तभी नवजागरण की पेचीदा प्रक्रिया समझ में आयेगी।"[75]

डॉ॰ रामविलास शर्मा के अनुसार, "भारतीय साहित्य में तमिल कवि सुब्रह्मण्य भारती राष्ट्रीय स्वाधीनता–आंदोलन के प्रतिनिधि कवि हैं।. . . प्राचीन संस्कृति पर गर्व, तमिल भाषा से प्रेम, निर्धन जनता से हार्दिक सहानुभूति, सामाजिक व्यवस्था को बदलने की उत्कट आकांक्षा उनके काव्य में उदात्त तत्त्व की सृष्टि करती है और यह उदात्त अभिन्न रूप से भारत के स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ा हुआ है।"[76]

स्पष्ट है डॉ॰ शर्मा स्वातंत्र्य बोध को साहित्य मूल्याकन या साहित्येतिहास लेखन में एक महत्वपूर्ण मूल्य के रूप में स्थापित करते हैं।

साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने भारत को हमेषा एक पिछड़ा हुआ, लुटता हुआ और आपस में लड़ता हुआ देष सिद्ध करने का प्रयास किया और वे बहुत कुछ इसमें सफल भी हुए। उन्होंने सिद्ध किया कि भारत को अनेक लोगों ने लूटा है इसलिए आज यदि हम शासन कर रहें तो यह कोई अनौखी बात नहीं है। उन्होंने यह भी सिद्ध करने की कोषिष की कि भारत को पहली बार हमने ही एक राष्ट्र का स्वरूप देकर इसका विकास किया है। वे लगातार लोगों के मन में भेदभाव की दीवार खड़ी कर भारत की राष्ट्रीय एकता को मार्ग में क्षेत्र, धर्म और भाषा की दीवारें खड़ी करते रहे। डॉ॰ रामविलास शर्मा ने उनकी साम्राज्यवादी नीतियों को समझ कर अपने लेखन के माध्यम से इन दीवारों को ढहाने की लगातार कोषिष की है।

अंग्रेजों ने सर्वप्रथम आर्य आक्रमण को सिद्धान्त गढ़कर उत्तर–दक्षिण के मध्य दीवार खड़ी करने की कोषिष की तथा उत्तर भारतीयों को अपनी तरह आक्रमण कारी मान कर अपने खेमे में मिलाने की कोषिष की। डॉ॰ शर्मा ने आर्य आक्रमण के सिद्धान्त को पुरातत्विक, साहित्यक और भाषाई साक्ष्यों के आधार पर चुनौती देकर खंडित करते हुए कहा कि "इस मान्यता का जन्म और प्रचार एषिया में यूरोपियन साम्राज्यवाद के विस्तार से जुड़ा हुआ है। इस मान्यता का लक्ष्य आर्यों को द्रविड़ों से अलग करना है।"[77]

साम्प्रदायिक आधार पर भारत की राष्ट्रीय एकता को खंडित करना अंग्रेजों की एक महत्वाकांक्षी परियोजना थी जिसमें वे पूरी तरह सफल माने जा सकते हैं। रामविलास शर्मा लिखते हैं कि अंग्रेज यह बात भली–भाँति जानते थे कि जब "सन 1857 की लड़ाई में उत्तर भारत के हिन्दू और मुसलमान अंग्रेजों के विरुद्ध मिलकर लड़े तो हिन्दुस्तानी प्रदेष के लोगों ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये थे।"[78] इस धार्मिक एकता से डरकर अंग्रेजों ने भविष्य में हिन्दु–मुसलमान के मध्य इतिहास धर्म, संस्कृति, भाषा, साहित्य और राजनीति की इतनी दीवारें खड़ी कर दी कि ये आज तक एक दूसरे को फूटी आँख नहीं सुहाते। डॉ॰ रामविलास शर्मा अपने लेखन में इस सम्प्रदायवादी इतिहास दृष्टि का खंडन कर न केवल अंग्रेजी कूटनीतियों का खुलासा करते रहे बल्कि हर संभव साम्प्रदायिक सद्भाव की वकालत भी करते रहे हैं।

डॉ॰ रामविलास शर्मा हिन्दुओं पर मुसलमानों के आक्रमण की बात न मानकर उसे कुछ जातियों का आक्रमण मानते हैं। वे कहते हैं कि "तुर्क मुसलमान बनने से पहले भी आक्रमणकारी थे तथा उन्होंने अपने लड़ाकेपन के कारण अपने से सभ्य जातियों अरवों, ईरानियों और हिन्दुस्तानियों को हराया। भारत में वे अपने तुर्कपन की रक्षा न कर यहाँ की जातियों में ही घुल मिल गए। वस्तुतः बाहरी मुसलमान तो बहुत थोड़े थे बाकी सब यही के मूल निवासी थे जिन्होंने केवल अपना धर्म बदला था संस्कृति नहीं।"[79] वास्तविकता तो यह है कि "तुर्क और मंगोलों के आक्रमण उस वक्त शुरु हुए थे तब वे इस्लाम का नाम भी नहीं जानते थे। लेकिन सम्प्रदायवादी इतिहास दृष्टि उन्हें भी इस्लाम के खाते में डालकर हिन्दु–मुस्लिम की खाई को और चौड़ा कर देती है। इसके विपरीत डॉ॰ शर्मा तुर्क आक्रमणकारियों की प्रगतिषील भूमिका से भी साफ–साफ इंकार करते हैं।"[80] स्पष्ट है कि वे मुसलमानों को आक्रमणकारी और उत्पीड़क मानक कर वर्तमान भारतीय समाज में साम्प्रदायिक जहर फैलाने के पक्ष में नहीं है तथा न ही इस आक्रमणकारी जातियों को श्रेष्ठ मानकर भारतीय जनता में हीनता बोध की भावना चाहते हैं बल्कि **उनका लक्ष्य तो साम्प्रदायिक सद्भाव और राष्ट्रीय गर्व की भावना का प्रसार करना है।**

डॉ॰ रामविलास शर्मा 'आजकल धार्मिक आधार पर इतिहास, संस्कृति, भाषा और साहित्य की व्याख्या करने को अनुचित और घातक मानते हैं। इसके लिए वे जातीय आधार को इतिहास सम्मत और तर्कपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार आक्रमणकारी मुसलमान और आज के भारतीय मुसलमान जातियों से परे नहीं हैं। धर्म एक होने से उनकी जाति एक नहीं हो जाती। भारत के बंगाल, पंजाब, सिंध और कष्मीर प्रान्तों में आधी से अधिक आबादी मुसलमानों की होने के बावजूद उनकी भाषा क्षेत्रीय भाषा रही और अलग–अलग जातियाँ। फिर भी हिन्दी प्रदेष में मात्र कुछ मुसलमान होने के बावजूद वहाँ की संस्कृति,

जाति और भाषा को अलग करने का प्रयास किया जा रहा है। जो मात्र साम्प्रदायिक योजना का हिस्सा है। उन्हें इस बात का खेद है कि 'हिन्दी प्रदेष और कष्मीर में उर्दू को वह महत्व दिया गया जो उसे बंगाल में नहीं मिल सका।' अन्ततः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "मुलसमानों के राजत्व काल में कष्मीरी सिंधी आदि जातियों का सांस्कृतिक विकास अवरुद्ध नहीं हुआ। यह अवरुद्ध हुआ अंग्रेजों के जमाने में। सभी मुसलमानों की एक ही भाषा है, उनमें किसी तरह की जातीयता नहीं है, यह सिद्धान्त अंग्रेजी राज में प्रचारित किया गया। . . .जातीय भाषा और साहित्य एकता को सुदृढ़ करेगा अतः हमें कष्मीर समेत सम्पूर्ण भारत में जातीयता को सुदृढ़ करना चाहिए।"[81]

वे मुसलमानों को अंग्रेजों की तरह बाहरी व्यक्ति नहीं मानते। इनके मध्य पनपा विद्वेष राजनीति और षड़यंत्र का हिस्सा है। इनके मध्य आपसी विद्वेष का कोई ठोस आधार वे नहीं मानते क्योंकि "भारत के निन्यानवें प्रतिषत मुसलमान यहीं के प्रदेषों के निवासी हैं, यहीं की भाषाएँ बोलते हैं और यहीं की जातीयता स्वीकार करते हैं। बाहर से आने वालों का भी यही हाल है।"[82]

डॉ॰ शर्मा हिन्दी–उर्दू का विभाजन साम्प्रदायिक आधार पर करने को सम्प्रदायवादियों एवं साम्राज्यवादियों के षड़यंत्र का हिस्सा मानते हैं अन्यथा भाषा वैज्ञानिक आधार पर दोनों एक ही भाषा के दो रूप हैं। भले ही उनकी भविष्यवाणी सच नहीं हुई लेकिन 1947 में लिखे एक लेख में उनके द्वारा राष्ट्रीय एकता के सूत्रों को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। उन्होंने लिखा था कि "अक्षर, शब्द, छंद, भाव और विचार–ये सब यही कहते हैं कि हमारी एकता का आधार बहुत ही विस्तृत और व्यापक है। दुनिया की भाषाएँ एक–दूसरे के नजदीक आ रही हैं। हिन्दी और उर्दू तो एक–दूसरे के इतना नजदीक है जितनी नजदीक दुनिया की कोई दो भाषाएँ नहीं है। इसलिए साहित्य की भविष्यवाणी है कि हमारा देष फिर एक होगा। धर्म के आधार पर न दो राष्ट्र बन सकते हैं और न दो भाषाएँ और संस्कृतियाँ बन सकती हैं।"[83]

डॉ॰ रामविलास षर्मा की दृष्टि में राष्ट्रभाषा का मुद्दा भी राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से एक अनसुलझी पहेली बन चुका है। हिन्दी **एक ओर** अंग्रेजी वर्चस्व का सामना करना पड़ रहा है तो **दूसरी ओर** भारतीय भाषाओं को आतंकित किया जा रहा है, **तीसरी ओर** उसके मुकाबले में उर्दू को खड़ा कर दिया गया है तो **चौथी ओर** जनपदीय बोलियों को अधिकार देने की बात की जा रही है। वे स्पष्ट कहते हैं कि "हिन्दी इंपिरियलिज्म का नारा तो बहुत लोग लगाते हैं, अंग्रेजी इंपीरियलिज्म के बारे में चुप्पी साधे रहते हैं।"[84] जनपदीय बोलियों के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण एकदम साफ है। वे कहते हैं कि "हिन्दी राष्ट्रीय भाषा

तभी बनेगी जब वह जातीय भाषा के रूप में अपने जनपदों में मान्य होगी। जनपदीय भाषाओं के आंदोलन अन्ततः अंग्रेजी को ही लाभ पहुँचा रहे हैं।"[85] उनका भारतीय भाषाओं से कोई विरोध नहीं है इसलिए कहते हैं कि "हम ये नहीं कर रहे कि आप हिन्दी चलाइये। आप अंग्रेजी के लिए बस भारतीय भाषाएँ, बीस भारतीय भाषाएँ जितनी आप चलाना चाहें चलाइये।"[86] उर्दू को लेकर उनके दिमाग में कोई भ्रम नहीं है। वे सलाह देते हैं कि "उर्दू भी लिखो तो देवनागरी में लिखो। . . .उर्दू से हमारा विरोध अरबी के कारण हैं। फारसी के कारण नहीं। फारसी के पचास फीसदी शब्द संस्कृत के हैं। अरबी के शब्द हमारे यहाँ खप नहीं सकते।. . . लेकिन यदि अरबी के कुछ शब्द हिन्दी में आ जाएँ तो उससे भाषा बिगड़ती नहीं है।"[87] वे अंग्रेजों के षड़यंत्र को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "भारतीय भाषाओं के अन्तर्विरोध का लाभ उठाते हुए अंग्रेजों ने इन्हें एक–दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर भारतीय साहित्य के विकास में बाधा पहुँचाई है।"[88]

डॉ॰ रामविलास शर्मा देख रहे थे कि लोग द्विज और शूद्र, स्त्री और पुरुष तथा हिन्दू और मुसलमान के आधार पर समाज और साहित्य की व्याख्या कर रहे हैं। ऐसे लोग "जहाँ हिन्दू और मुसलमान का भेद नहीं वहाँ ऐसा भेद पैदा कर लेते हैं, जहाँ द्विज और शूद्र का भेद नहीं है, वहाँ भी ऐसा भेद पैदा कर लेते हैं।" जबकि वास्तविक यह है कि "हिन्दी साहित्य केवल हिन्दी जाति का साहित्य है किसी सम्प्रदाय या वर्ग का नहीं।"[89] उनका मानना है कि "षूद्रों की स्थिति अंग्रेजी राज में जैसी थी, वैसी पहले नहीं थी। अर्थात् इससे अच्छी थी।"[90] नारी समस्या के सम्बन्ध में वे मानते हैं कि "नारी षिक्षित हो, आर्थिक रूप से समृद्ध हो, श्रम की बराबरी हो, परिवार का गठन सहयोग और स्वतंत्रता पर आधारित हो तभी उसकी स्थिति में सुधार हो सकेगा।"[91]

डॉ॰ रामविलास शर्मा ने न केवल राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से घातक मुद्दों को अपने लेखन का आधार बनाया बल्कि राष्ट्रीय विकास में बाधक मुद्दों पर भी अपना ध्यान केन्द्रित किया। यहाँ **धर्म** का वास्तविक स्वरूप, **आधुनिकता** तथा **स्वदेषी** की अपधारणा पर विचार करना असंगत नहीं होगा। क्योंकि इन तीनों का सम्बन्ध मनुष्य के स्वातंत्र्य बोध से भी है।

वे धर्म के तीन पक्ष मानते हैं – पहला पक्ष नैतिकता का, दूसरा चमत्कार का तथा तीसरा कर्मकांड का। वे धर्म की अपेक्षा दर्षन की भूमिका को अधिक उदार मानते हैं अतः महत्व मिलना चाहिए। धर्म के मुद्दे को वे सैद्धांतिक नहीं व्यवहारिक आधार पर हल करने का प्रस्ताव करते हैं। वे ये भी मानते हैं कि षिक्षा, विज्ञान और उद्योगों के विकास के साथ धर्म का चमत्कार व कर्मकांड वाला पक्ष छूटकर शुद्ध

नैतिकता वाला पक्ष शेष रह जायेगा। जैसे तुलसीदास कहते हैं कि "परहित सरिस धर्म नहि भाई।"[92] धर्म की नैतिकता वाला पक्ष धार्मिक क्षेत्र में मनुष्य को स्वतंत्रता प्रदान करता है।

पष्चिमी आधुनिकता की चकाचौंध तथा उसका अंधानुकरण एक तरह की सांस्कृतिक परतंत्रता है। डॉ॰ शर्मा का स्पष्ट मानना है कि "संस्कृति चाहे प्राचीन हो या नवीन, चाहे पूर्व की हो या पष्चिमी की, किसी एक की पूर्ण स्वीकृति या अस्वीकृति अनुचित है। सभ्यता के विकास में स्वीकार और अस्वीकार का अनवरत सिलासिला चलता रहता है।"[93] उनके मतानुसार "आधुनिकता और परम्परा में कोई अनिवार्य द्वन्द्व नहीं है बर्षेत कि हमारा आधुनिकता का नक्षा स्पष्ट हो क्योंकि इसके अभाव में परम्परा से विवेक पूर्ण चयन संभव नहीं है।"[94] अर्थात् उनकी मान्यता है कि **'संग्रह त्याग न बिनु पहचाने।'**

"राजनैतिक उपनिवेषन की व्यवस्था की समाप्ति के बाद यूरोपीय और अमेरिकी देषों में आर्थिक उपनिवेष बनाने की होड़ मच रही है। विदेषी पूँजी वही काम कर रही है जो पहले विदेषी साम्राज्य करते थे। विदेषी पूँजी के बल पर आर्थिक विकास करने वाला कोई देष अपनी स्वतंत्रता को बनाए रख सके इसमें संदेह है। इसलिए डॉ॰ रामविलास शर्मा वास्तविक स्वतंत्रता के लिए गाँधी, गाँधीवाद और स्वदेषी आंदोलन का समर्थन करते हैं। स्वदेषी से उनका मतलब है अपने उद्योग, अपनी भाषा और अपनी संस्कृति से विदेषी वर्चस्व की समाप्ति।"[95] उनकी इच्छा है कि "आज फिर स्वदेषी आंदोलन शुरू होना चाहिए। उसकी रूपरेखा स्पष्ट करते हुए कहते हैं" कि "जिसका नारा हो–विदेष से कर्ज लेना बंद करो, देषी पूँजी और देषी साधनों का उपयोग करो, साम्राज्यवाद से सम्बन्ध तोड़ो।. . . इसका एक काम विदेषी संस्कृति के प्रभाव को रोकना भी होगा। इसके बिना हमारा भारतीय मनोबल, आत्मबल बढ़ नहीं सकता।. . . अंग्रेजी के षिकंजे से स्वदेषी भाषाओं को मुक्त करना ही होगा। . . .**इस स्वदेषी आंदोलन को अगर कोई गाँधीवादी आंदोलन कहें तो फिर मैं भी गाँधीवादी हूँ।**"[96] वे स्वदेषी आंदोलन को जनवादी क्रांति का पूरक मानते हुए लिखते हैं कि "अर्थतंत्र से लेकर भाषा और संस्कृति तक स्वदेषी को धुरी बनाकर एक शक्तिषाली साम्राज्य विरोधी राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे का निर्माण किया जा सकता है। ऐसा मोर्चा जनवादी क्रांति के शेष कर्त्तव्य पूरे कर सकता है।"[97]

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि आजादी से पूर्व डॉ॰ रामविलास शर्मा जहाँ राष्ट्रीय स्वतंत्रता का लक्ष्य निर्धारित कर रहे थे वहीं आजादी के बाद राष्ट्रीय स्वाभिमान की चुनौती उनके सामने थी। साहित्य के प्रेरणा को स्पष्ट करते समय वे लगभग यही करना चाहते हैं "साहित्य का पौधा हमारे

सामाजिक जीवन की धरती पर ही उगता है। . . .किसी समय हमारे साहित्यकार की प्रेरणा का स्रोत देष की स्वाधीनता प्राप्ति की आकांक्षा थी। वैसा ही शक्तिषाली सामाजिक उद्देष्य उनके सामने आज भी होना चाहिए। यह उद्देष्य सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्र के नवनिर्माण का है।"[98]

साम्राज्यवाद हर तरह की स्वतंत्रता का दुष्मन था। स्वतंत्रता और उसकी रक्षा के लिए साम्राज्यवादी अवधारणा को चुनौती देना अनिवार्य था। **डॉ॰ जयनारायण** ने "साम्राज्यविरोध को रामविलास शर्मा के समग्र साहित्यिक वैचारिक अनुषीलन की धुरी कहा है। क्योंकि उनका हर साक्षात्कार, हर आलेख, हर किताब किसी न किसी रूप में साम्राज्यवाद के विरुद्ध जिरह करती, उसे ध्वस्त करती दिखाई देगी।"[99] **डॉ॰ अवधेष प्रधान** के अनुसार "डॉ॰ शर्मा ने विभाजन के आधारों पर आघात करके उन्हें वैचाकिर रूप से निर्मूल करके एकता के हित में एक महान ऐतिहासिक कार्य किया है।"[100] **डॉ॰ पूरनचंद जोषी** उनके सम्पूर्ण अवदान को बड़ी कुषलता से समेटते हुए लिखते हैं कि "मुख्य रूप से यह एक ऐसे बुद्धिजीवी के प्रति श्रद्धांजलि है जिसकी जड़ें जो स्वाधीनता संघर्ष के युग के नवजागरण में थी, जो स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की वृहत् राष्ट्र निर्माण परियोजन का भी प्रत्यक्ष साक्षी रहा और जिसने इस परियोजना के संकट ग्रस्त होने पर स्वप्न भंग जन्य निराषा से आक्रांत न होकर आज के भारत की समस्याओं को भारत के इतिहास के संदर्भ में समझने और नई संभावनाओं और आषा के स्रोतों को खोजने का भागीरथ बौद्धिक प्रयास शुरु किया।"[101]

अब निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि डॉ॰ रामविलास शर्मा की राष्ट्रीयता एक्यबोध, स्वत्वबोध और स्वातंत्र्य बोध के अनिवार्य और व्यापक आधारों पर आधारित है। उनकी यह राष्ट्रीयता न तो कोरी सैद्धातिक है, न एकांगी है, न किसी का अनुकरण मात्र है बल्कि व्यवहारिक, सम्पूर्ण और मौलिक चिंतन पर आधारित है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उन्होंने इस देषभक्ति को अपने जीवन और लेखन में खून से सींचा है। यह उनके रोम–रोम व्याप्त था इसलिए उनके प्रत्येक कार्य–व्यापार में इसकी झलक देखी जा सकती है। देष और देष की जनता के लिए उनका सम्पूर्ण जीवन और लेखन समर्पित था। इस सम्बन्ध में उनकी कथनी और करनी की एकता न केवल उन्हें अन्य साहित्यकारों से अलगाती है बल्कि उन्हें आजाद भारत की शीर्ष साहित्यकार, विचारक और देषभक्त भी सिद्ध करती है।

संदर्भ सूची

1 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 22

2 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 39

3 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 7

4 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 7

5 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 179

6 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 7–8

7 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 180

8 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 80

9 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 83

10 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 38

11 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 80–81

12 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 90

13 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 144

14 रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 24

15 रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 172

16 रामविलास शर्मा – भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–2 पृ॰ 428

17 रामविलास शर्मा – भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–2 पृ॰ 544

18 रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना, भाग–2 पृ॰ 545–446, 550–551

19 रामविलास शर्मा – भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–2 पृ॰ 552

20 रामविलास शर्मा – भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–2 पृ॰ 587–588

21 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 217

22 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 59

23 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 61–69

24 आलोचना – सहस्राब्दी, अंक 5 पृ॰ 229

25 सम्पा॰ डॉ॰ जयनारायण – रामविलासल शर्मा, कल के लिए, विषेषांक, पृ॰ 19

26 सम्पा॰ विजय गुप्त – साम्य, अंक 26, पृ॰ 59

27 सम्पा॰ विजय गुप्त – साम्य, अंक 26, पृ॰ 103

28 सम्पा॰ देवेन्द्र दीपक – साक्षात्कार, अंक 310–311, पृ॰ 132

29 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 175

30 ;पद्ध रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल – प्रगतिषील काव्यधारा, पृ॰ 26

;पपद्ध रामविलास शर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य, पृ॰ 342

31 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य की भूमिका, पृ॰ 5

32 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य की भूमिका, पृ॰ 11

33 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य की भूमिका, भूमिका, पृ॰ 5

34 रामविलास शर्मा – भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भूमिका, पृ॰ 5

35 रामविलास शर्मा – भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–1 पृ॰ 6–9

36 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, भूमिका, पृ॰ 248

37 रामविलास शर्मा – भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–1 पृ॰ 105

38 रामविलास शर्मा – भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–1 पृ॰ 9

39 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 48–49

40 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य की भूमिका, पृ॰ 226–229

41 रामविलास शर्मा – इतिहास और समकालीन परिदृश्य भाग–1 उद्धृत साक्षात्कार अंक 310–11, पृ॰ 186

42 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य की भूमिका, पृ॰ 103

43 रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 172

44 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न, पृ॰ 325

45 देखें रामविलास शर्मा – भारतीय नवजागरण और यूरोप, पृ॰ 19–20

46 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य की भूमिका, पृ॰ 233–23

47 सम्पा॰ नन्द भारद्वाज – संवाद निरन्तर, पृ॰ 68

48 रामविलास शर्मा – भाषा साहित्य और हिन्दी प्रदेष, भाग–1, पृ॰ 13

[49] रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 171

[50] सम्पा॰ अजय तिवारी – आज के सवाल और मार्क्सवाद, भूमिका, पृ॰ 346–347

[51] रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 164 व 166

[52] रामविलास शर्मा – भाषा साहित्य और हिन्दी प्रदेष, भाग–1, पृ॰ 08

[53] गाँधी वाङमय, 14/32

[54] नामवर सिंह उद्धृत – इतिहास और आलोचना, पृ॰ 161

[55] रामविलास शर्मा, सम्पा॰ विष्वनाथ त्रिपाठी – हिन्दी के प्रहरी, पृ॰ 20

[56] रामविलास शर्मा – भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास, पृ॰ 7

[57] रामविलास शर्मा – भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद, भूमिका, पृ॰ 10

[58] रामविलास शर्मा, सम्पा॰ प्रकाष मनु – षिखर आलोचक, पृ॰ 13

[59] रामविलास शर्मा, सम्पा॰ विष्वनाथ त्रिपाठी – हिन्दी के प्रहरी, पृ॰ 131–132

[60] सम्पा॰ नामवर सिंह – आलोचना सहस्राब्दि, अंक 5, पृ॰ 218

[61] सम्पा॰ जयनारायण, डॉ॰ शर्मा – कल के लिए, विशेषांक, पृ॰ 68

[62] सम्पा॰ विजयगुप्त – साम्य, पृ॰ 90

[63] रामविलास शर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, पृ॰ 20

[64] रामविलास शर्मा – वाधीनता संग्राम, बदलें परिप्रेक्ष्य, पृ॰ 12

[65] रामविलास शर्मा – विराम चिह्न, पृ॰ 144

[66] रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 370

[67] रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 182

[68] रामविलास शर्मा – स्वाधीनता संग्रामः बदलते परिप्रेक्ष्य, भूमिका, पृ॰ 14

[69] रामविलास शर्मा – परम्परा का मूल्यांकन, पृ॰ 24

[70] रामविलास शर्मा – स्वाधीनता संग्रामः बदलते परिप्रेक्ष्य, पृ॰ 213–252

[71] रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 339

[72] देवेन्द्र दीपक – उद्धृत साक्षात्कार, पृ॰ 182

[73] रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 166–167

74 रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 151

75 रामविलास शर्मा – महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, पृ॰ 19

76 रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना, भाग–2, पृ॰ 13

77 रामविलास शर्मा – पष्चिमी एषिया और ऋग्वेद, पृ॰ 19

78 रामविलास शर्मा – स्वाधीनता संग्राम, बदलें परिप्रेक्ष्य, पृ॰ 182–183

79 रामविलास शर्मा – भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–02, पृ॰ 5

80 रामविलास शर्मा – लोक जागरण और हिन्दी साहित्य, पृ॰ 66–69

81 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 54–60

82 रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 38

83 रामविलास शर्मा – भाषा युगबोध और कविता, पृ॰ 75

84 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 339

85 रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 24

86 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, भूमिका, पृ॰ 339

87 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, भूमिका, पृ॰ 225

88 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 94–95

89 रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 7–8

90 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 51

91 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न, पृ॰ 284–285

92 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 236 व 300

93 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न, पृ॰ 320

94 रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना, भाग, 2

95 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 273

96 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 317–318

97 रामविलास शर्मा – भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, पृ॰ 24

98 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न, पृ॰ 43

[99] सम्पा॰ जयनारायण – रामविलास शर्मा विशेषांक, कल के लिए, संपादकीय

[100] सम्पा॰ विजय गुप्त – साम्य, पृ॰ 131

[101] आलोचना, सहस्राब्दी, अंक 5 पृ॰ 123